https://www.amitrakshar.co.in/journal : www.amitrakshar.co.in
Volume – 3 | Issue – III | May-June 2026 | ISSN: 3049-0278 (Online)

Amitrakshar International Journal
of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
(A Social Science, Science and Indian Knowledge Systems Perspective)
Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed, Bi-Monthly, International E-Journal

सोहराई चित्रकला: विस्तृत इतिहास, कलात्मकता और सांस्कृतिक महत्व

Dr.Dharam Pal Singh[1]

Guided by
Dr. Satyendra Kumar[2]

भाोध सार

सोहराई चित्रकला पूर्वी भारत के झारखंड और बिहार के कुछ हिस्सों के आदिवासी क्षेत्रों में प्रचलित स्वदेशी भित्ति कला का एक जीवंत और प्राचीन रूप है। कृषि जीवन, रीति-रिवाजों और सामुदायिक परंपराओं में गहराई से निहित सोहराई कला मनुष्य, प्रकृति और आध्यात्मिकता के बीच घनिष्ठ संबंध को दर्शाती है। परंपरागत रूप से महिलाओं द्वारा बनाई जाने वाली ये चित्रकलाएँ कलात्मक अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ पीढ़ियों से चली आ रही एक सांस्कृतिक परंपरा भी हैं।

ISSN: 3049-0278 (Online) DOI (Crossref) Prefix: 10.63431

AIJITR - Volume- 3, Issue-III, May-June 2026

Copyright © 2026 by author (s) and (AIJITR). This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

सोहराई कला क्या है?

सोहराई चित्रकला एक लोक और आदिवासी भित्ति चित्र है, जिसे पारंपरिक रूप से शरद ऋतु की फसल कटाई के बाद मनाए जाने वाले फसल उत्सव सोहराई के दौरान घरों और पशुशालाओं की मिट्टी की दीवारों पर बनाया जाता है। इस कला शैली में प्राकृतिक रंगों और सरल औजारों का उपयोग किया जाता है, और इसकी विशेषता बोल्ड रेखाएं, लयबद्ध पैटर्न और प्रकृति, जानवरों और ग्रामीण जीवन से प्रेरित रूपांकन हैं।

उत्पत्ति और इतिहास

सोहराई चित्रकला की उत्पत्ति प्रागैतिहासिक काल से मानी जा सकती है, जिसका झारखंड के हजारीबाग क्षेत्र में पाई जाने वाली प्राचीन गुफा कला से गहरा संबंध है। यह परंपरा संथाल, मुंडा, ओरांव और कुर्मी जैसी जनजातीय समुदायों में विकसित हुई। ऐतिहासिक रूप से, मानसून के बाद घरों की शुद्धि और नवीनीकरण के अनुष्ठान के हिस्से के रूप में सोहराई चित्र वार्षिक रूप से बनाए जाते थे। इस कला का ज्ञान मौखिक रूप से और अभ्यास के माध्यम से प्रसारित होता रहा, बिना लिखित अभिलेखों के, जिससे यह एक जीवंत और विकसित होती परंपरा बन गई।

सोहराई चित्रकला के प्रकार

सोहराई कला मोटे तौर पर दो परस्पर संबंधित रूपों में मौजूद है:

•> सोहराई चित्रकला - फसल उत्सव से जुड़ी यह चित्रकला उर्वरता, समृद्धि और पशु पूजा पर केंद्रित है।

• खोवर चित्रकला - परंपरागत रूप से विवाह समारोहों के दौरान बनाई जाने वाली यह चित्रकला उर्वरता, मिलन और जीवन की निरंतरता का प्रतीक है। खोवर चित्रकला अक्सर अधिक जटिल होती है और इसे घर के भीतरी कमरों में बनाया जाता है।

प्रतीकों

सोहराई चित्रकला में प्रत्येक तत्व का प्रतीकात्मक अर्थ होता है:

•> जानवर, विशेषकर बैल और गाय, धन, शक्ति और कृषि समृद्धि के प्रतीक हैं।

• पौधे और लताएँ उर्वरता, वृद्धि और पुनर्जनन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

•> ज्यामितीय पैटर्न व्यवस्था, निरंतरता और ब्रह्मांडीय संतुलन का प्रतीक हैं।

•> मानव आकृतियाँ अक्सर उत्सव, एकता और सामूहिक जीवन को दर्शाती हैं।

ये चित्र समृद्धि, सद्भाव और सुरक्षा के लिए दृश्य प्रार्थनाओं के रूप में कार्य करते हैं।

चित्रकला तकनीकें

1. Research Scholar, Bir Tikendrajir University, Manipur.
2. Assistant Professor, Department of Fine Art, Bir Tikendrajir University, Manipur.

DOI Link (Crossref) Prefix: https://doi.org/10.63431/AIJITR/3.III.2026.94-99
AIJITR, Volume 3, Issue –III, May - June, 2026, PP.94-99
Received on 31th May, 2026 & Accepted on 10th June, 2026,
Published: 20th June, 2026.

Volume – 3 | Issue – III | May-June 2026 | ISSN: 3049-0278 (Online)

Amitrakshar International Journal
of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
(A Social Science, Science and Indian Knowledge Systems Perspective)
Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed, Bi-Monthly, International E-Journal

सोहराई चित्रकला अपनी मुक्तहस्त रचना और सशक्त दृश्य लय के लिए जानी जाती है। कलाकार अक्सर निम्नलिखित तकनीकों का उपयोग करते हैं:

•> चौड़ी, व्यापक रेखाएँ
•> परतदार रंगाई तकनीकें
•> खाली जगह का उपयोग, जहां दीवार का प्राकृतिक रंग डिजाइन का हिस्सा बनता है।

यह शैली मापी हुई होने के बजाय सहज है, जो सटीकता की तुलना में अभिव्यक्ति पर जोर देती है।

बनाने की विधि

सोहराई चित्रकला बनाने की प्रक्रिया में कई चरण शामिल होते हैं:

•> दीवार की तैयारी: दीवार को साफ किया जाता है और उस पर मिट्टी और गोबर के मिश्रण का लेप लगाया जाता है।
•> बेस कोटिंग: पृष्ठभूमि के रूप में सफेद या लाल मिट्टी की एक परत लगाई जाती है।
•> डिजाइन निर्माण: प्रारंभिक रेखाचित्रों के बिना, रूपांकनों को सीधे हाथ से बनाया जाता है।
•> रंग प्रयोग: कंट्रास्ट और गहराई को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक रंगों को परतों में लगाया जाता है।
•> अंतिम रूप देना: बॉर्डर और बारीक रेखाएं रचना को पूरा करती हैं।

यह पूरी प्रक्रिया अक्सर सामूहिक रूप से, गीतों और अनुष्ठानों के साथ की जाती है।

प्रयुक्त सामग्री

सोहराई चित्रकला पूरी तरह से प्राकृतिक और स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्रियों पर निर्भर करती है:

•> लाल मिट्टी (गेरू)
•> सफेद मिट्टी या चावल का पेस्ट
•> कोयले या कालिख से प्राप्त काला रंगद्रव्य
•> पीली मिट्टी
•> दीवार तैयार करने के लिए गोबर और मिट्टी का उपयोग किया जाता है। औजारों में उंगलियां, टहनियां, कपड़े के टुकड़े और घास के ब्रश शामिल हैं।

विषय और रूपांकन

सामान्य विषयों में शामिल हैं:

•> फसल कटाई और कृषि जीवन
•> पशुओं की पूजा
•> प्रकृति और वन्यजीव
•> उर्वरता और समृद्धि
• सामुदायिक उत्सव

इन आकृतियों में अक्सर जानवर, पक्षी, पेड़, फूल, सूर्य, चंद्रमा और अमूर्त ज्यामितीय पैटर्न शामिल होते हैं।

विशिष्ट विशेषताएं

•> प्राकृतिक रंगों का उपयोग
• त्योहारों और रीति-रिवाजों से गहरा जुड़ाव
• महिला कलाकारों का वर्चस्व
•> बोल्ड लाइनें और लयबद्ध पैटर्न
•> डिज़ाइन में दीवार की बनावट का समावेश

ये विशेषताएं सोहराई चित्रकला को अन्य भारतीय लोक कला परंपराओं से अलग करती हैं।

महत्व

सोहराई चित्रकला का सांस्कृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक महत्व बहुत अधिक है। यह सामुदायिक पहचान को मजबूत करती है, पूर्वजों के ज्ञान को संरक्षित करती है और मनुष्य एवं प्रकृति के बीच सामंजस्य का उत्सव मनाती है। आर्थिक रूप से, यह ग्रामीण महिला कलाकारों को आजीविका के अवसर प्रदान करती है, जबकि सांस्कृतिक रूप से, यह स्वदेशी ज्ञान का भंडार है।

प्रसिद्ध कलाकार

सोहराई कला को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले कुछ कलाकारों में निम्नलिखित शामिल हैं:

•> जमुना तुडु
• बुलू इमाम, सोहराई और खोवर कला के दस्तावेजीकरण और प्रचार में एक प्रमुख व्यक्ति थे।
•> मंजू देवी
•> दयामणि बारला (एक सांस्कृतिक समर्थक के रूप में)

उनके प्रयासों ने इस पारंपरिक कला रूप को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आधुनिक पुनरुद्धार और वैश्विक पहुंच

हाल के दशकों में, सोहराई चित्रकला को निम्नलिखित कारणों से पुनरुद्धार प्राप्त हुआ है:

Published by: Amitrakshar Publishers – Amitrakshar International Journal of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
https://www.amitrakshar.co.in/journal/ : editor@amitrakshar.co.in DOI (Crossref) Prefix: 10.63431

Volume – 3 | Issue – III | May-June 2026 | ISSN: 3049-0278 (Online)

Amitrakshar International Journal
of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
(A Social Science, Science and Indian Knowledge Systems Perspective)
Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed, Bi-Monthly, International E-Journal

• कला प्रदर्शनियाँ और संग्रहालय
•> गैर सरकारी संगठनों और सरकारी पहलों
• कैनवास, वस्त्र और गृह सज्जा पर रूपांतरण
•> अकादमिक और सांस्कृतिक अध्ययन में समावेशन
सोहराई कला को अब विश्व स्तर पर प्रदर्शित किया जा रहा है, जिससे परंपरा को संरक्षित करने में मदद मिल रही है और साथ ही इसे समकालीन संदर्भों में विकसित होने का अवसर भी मिल रहा है।

चुनौतियां

बढ़ती मान्यता के बावजूद, सोहराई चित्रकला को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है:
• शहरीकरण के कारण पारंपरिक ज्ञान का लुप्त होना
•> व्यावसायीकरण जिससे प्रामाणिकता कम होने का खतरा है
• कलाकारों के लिए स्थायी बाजारों तक सीमित पहुंच
अपर्याप्त दस्तावेज़ीकरण और संस्थागत समर्थन
इस अनूठी सांस्कृतिक विरासत के अस्तित्व और अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए इन चुनौतियों का समाधान करना आवश्यक है।

सोहराई कला क्यों महत्वपूर्ण है?

सोहराई चित्रकला महज लोक कला नहीं है। यह मिट्टी और रंगों में उकेरी गई सांस्कृतिक स्मृति है, जो एक ऐसे विश्वदृष्टिकोण को व्यक्त करती है जहां मानव जीवन, कृषि, प्रकृति और आध्यात्मिकता सामंजस्य में विद्यमान हैं। आधुनिक दुनिया में, सोहराई निम्नलिखित प्रस्तुत करती है:
• प्राकृतिक सामग्रियों पर आधारित एक टिकाऊ कलात्मक अभ्यास
• ग्रामीण महिलाओं के लिए एक ऐसा मंच जो उन्हें सांस्कृतिक वाहक और आर्थिक योगदानकर्ता के रूप में प्रस्तुत करता है।
•> पारंपरिक ज्ञान और समकालीन रचनात्मक अभिव्यक्ति के बीच एक सेतु
सोहराय पर्व : प्रकृति, पशु और संस्कृति का अद्‌भुत आदिवासी उत्सव
सोहराय पर्व की परंपरा अत्यंत प्राचीन मानी जाती है। इसकी जड़ें मानव सभ्यता के उस युग से जुड़ी हैं जब मनुष्य ने खेती-बाड़ी और पशुपालन को जीवन का आधार बनाया था। इतिहासकारों के अनुसार, इसका संबंध पशुचारण युग से है — जब मानव ने प्रकृति और पशुओं के साथ सामंजस्य का रिश्ता बनाया।
ब्राह्मण धर्मावलंबियों के त्यौहार दीपावली के समान ही झारखंड और आस-पास के राज्यों में जब रातें ठंडी होने लगती हैं और खेतों में नई फसल की सुगंध फैलने लगती हैं, तब सोहराय पर्व मनाया जाता है। यह पर्व न केवल झारखंड, बल्कि ओड़िशा, छत्तीसगढ़, बिहार, पश्चिम बंगाल और असम जैसे राज्यों में भी समान श्रद्धा और उल्लास के साथ मनाया जाता है। यह पर्व फसलों की अच्छी उपज और पशुधन की खुशहाली के लिए आभार प्रकट करने का अनूठा तरीका है।
झारखंड में संथाल, मुंडा, हो या अन्य आदिवासी समुदायों के लिए यह विशेष त्यौहार है। यह उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस पर्व को आदिवासियों के साथ-साथ कहीं-कहीं सदान यानी गैर आदिवासी समुदायों के लोग भी हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।
सोहराय पर्व का संबंध 'सराहने' या 'सहलाने' से है, जिसका अर्थ है– पशुओं को दुलारना, उनकी सेवा करना और उनके प्रति कृतज्ञता जताना। यह पर्व मनुष्य और पशु के पारस्परिक संबंध का प्रतीक है। एक ऐसा संबंध जिसमें मनुष्य अपने पशुओं को केवल श्रम का साधन नहीं, बल्कि परिवार का सदस्य मानता है।
झारखंड एक बहुप्रजातीय और बहुसांस्कृतिक राज्य है, जहां आर्य, द्रविड़ और ऑस्ट्रिक तीनों संस्कृति की धाराएं एक साथ प्रवाहित होती हैं। यही संगम झारखंडी संस्कृति का विशिष्ट स्वरूप रचता है। झारखंड का शायद ही कोई महीना हो जब कोई पर्व-त्योहार न मनाया जाता हो। यहां के आदिवासी प्रकृति के साथ जीते हैं, और हर मौसम के साथ एक नए उत्सव का आगमन होता है। करम और सरहुल जैसे प्रमुख त्योहारों के बाद सोहराय पर्व को सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण पर्व माना जाता है।
इस पर्व को विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। जैसे कहीं इसे गोहाल पूजा, कहीं डांगर पूजा, और कहीं बांदना परब कहा जाता है। वहीं नेतरहाट के असुर, बिरजिया आदि आदिम जनजातियों के लोग इसे भैंसासुर की पूजा भी कहते हैं। इसे दीपावली के अगले दिन मनाया जाता है।
सोहराय पर्व की परंपरा अत्यंत प्राचीन मानी जाती है। इसकी जड़ें मानव सभ्यता के उस युग से जुड़ी हैं जब मनुष्य ने खेती-बाड़ी और पशुपालन को जीवन का आधार बनाया था। इतिहासकारों के अनुसार, इसका संबंध पशुचारण युग से है — जब मानव ने प्रकृति और पशुओं के साथ सामंजस्य का रिश्ता बनाया।
झारखंड के आदिवासी अपने गाय-बैलों के सींगों में तेल और सिंदूर लगाते हैं। इसे तेल मखाई कहा जाता है। अमावस्या की रात में पशुओं के गोहाल में चौमुखी दीया जलाने की परंपरा है। इसी दिन सात प्रकार के अन्न– जैसे गेहूं, मक्का, बाजरा, अरहर, उड़द, कुरथी और धान को मिलाकर उबाला जाता है और उसे पशुओं को श्रेष्ठ आहार के रूप में खाने को दिया जाता है। यही आहार आदिवासी स्वयं भी ग्रहण करते हैं। इस तरह से यह पर्व साझे जीवन और सामूहिकता के दर्शन का प्रतीक बन जाता है।
इस पर्व के मौके पर गांव के चरवाहे और युवक ढोल, मांदर, नगाड़ा और करताल लेकर चांचर गीत (जो सोहराय के अवसर पर गाया जाता है) गाते हुए घर-घर घूमते हैं। घरों में लोग उन्हें पकवान, अन्न, और दक्षिणा देकर विदा करते हैं। खोरठा भाषा में इन गीतों को 'हराबदिया'

Published by: Amitrakshar Publishers – Amitrakshar International Journal of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
https://www.amitrakshar.co.in/journal/ : editor@amitrakshar.co.in DOI (Crossref) Prefix: 10.63431

https://www.amitrakshar.co.in/journal : www.amitrakshar.co.in
Volume – 3 | Issue – III | May-June 2026 | ISSN: 3049-0278 (Online)
Amitrakshar International Journal
of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
(A Social Science, Science and Indian Knowledge Systems Perspective)
Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed, Bi-Monthly, International E-Journal

गीत भी कहा जाता है।

पर्व की विविधता और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सोहराय पर्व की कहानियां और रस्में अलग-अलग क्षेत्रों में भले ही कुछ भिन्न रूपों में दिखाई देती हों, लेकिन इसका मूल भाव एक ही है– पशु, प्रकृति और मनुष्य के सह-अस्तित्व का उत्सव। विभिन्न जनजातीय परंपराओं में इसे अलग-अलग समय पर मनाया जाता है। कहीं यह दीपावली के साथ, तो कहीं पौष माह यानि मकर संक्रांति के समय आयोजित होता है। यह भिन्नता **हूल विद्रोह (1855)** के बाद विभिन्न क्षेत्रों में हुए सामाजिक विभाजन और स्थानांतरण के कारण मानी जाती है।

घर, रंग और स्त्रियों की सृजनात्मक भूमिका

सोहराय पर्व की तैयारी कुछ दिन पहले से शुरू हो जाती है। महिलाएं अपने घरों की सफाई, मिट्टी और गोबर से लिपाई व चूने से पुताई के बाद दीवारों पर रंगों का संसार बनाने लगती हैं। इसे सोहराय चित्रकला भी कहा जाता है। यह न केवल एक कला है, बल्कि आदिवासी महिलाओं की सामूहिक स्मृति, श्रम और सृजन की जीवित परंपरा है। इस कला का केंद्र झारखंड के हजारीबाग, गिरिडीह, दुमका और बोकारो जैसे जिलों में है। इस कला की दो प्रमुख शैलियां पाई जाती हैं– मंझू सोहराय तथा कुड़मी सोहराय।

सोहराय कला के माध्यम से विभिन्न जनजातीय समुदायों की महिलाएं पीढ़ी-दर-पीढ़ी मिट्टी, गोबर और प्राकृतिक रंगों के माध्यम से जीवन, प्रकृति और पशु-पक्षियों की आकृतियों को उकेरती आई हैं। इसके सबसे प्राचीन प्रमाण हजारीबाग के 'इसको' गुफा में मिले चित्रों में देखे जा सकते हैं, जिनसे संकेत मिलता है कि यह परंपरा पांच हज़ार वर्ष से भी अधिक पुरानी हो सकती है।

समय के साथ यह कला घरों की दीवारों से निकलकर आधुनिक अभिव्यक्तियों तक पहुंच चुकी है – अब यह कपड़ों, चादरों, हैंडक्राफ्ट वस्तुओं और डिजिटल डिज़ाइनों पर भी दिखाई देती है। वर्ष 2020 में सोहराय चित्रकला को भारत सरकार द्वारा 'जी आई' टैग प्राप्त हुआ, जिसने इसे न केवल राष्ट्रीय, बल्कि वैश्विक पहचान भी प्रदान की।

यह कला केवल सौंदर्य की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि स्त्रियों की स्मृति, श्रम और सृजन का दृश्य रूप है। यह इस बात का प्रमाण है कि आदिवासी समाज में स्त्रियां केवल सहभागी नहीं, बल्कि संस्कृति की वाहक और सर्जक हैं।

सोहराय पर्व भाई-बहन के पवित्र और अटूट संबंध का भी प्रतीक है। आदिवासी संथाल समाज में इस पर्व को प्रेम, पारिवारिकता और आपसी संबंधों के पुनर्स्थापन का अवसर माना जाता है। पारंपरिक मान्यता के अनुसार, सोहराय के अवसर पर भाई अपनी विवाहित बहन के घर जाकर उसे मायके आने का निमंत्रण देता है। बहन उस निमंत्रण को स्वीकार कर अपने मायके लौटती है और पूरे परिवार के साथ इस पर्व को मनाती है।

कहा जाता है कि यदि कोई भाई अपनी बहन को निमंत्रण नहीं भेजता, तो वह सोहराय में मायके नहीं आती है और समाज में इसे अच्छा नहीं माना जाता है। कुछ परंपराओं में तो यह भी माना गया है कि भाई को इसका प्रतीकात्मक दंड भी भुगतना पड़ता है।

मरांग बुरु और बूढ़े किसान की कहानी

आदिवासी समाज में सोहराय पर्व से जुड़ी अनेक लोककथाएं प्रचलित हैं। हर जनजाति के पास अपनी-अपनी व्याख्या है। एक लोकप्रिय कथा कुछ यूं है कि बहुत समय पहले एक बूढ़ा किसान नदी किनारे बैठा था। उसने देखा कि एक बछड़ा कीचड़ में सना हुआ है। उस बूढ़े ने बछड़े को नदी में ले जाकर नहलाया, साफ किया, और सहलाने लगा। बछड़ा चमकने लगा, और थोड़ी देर में उसकी मां वहां आ पहुंची। गाय ने जब यह देखा कि एक आदमी उसके बच्चे को इतना प्यार कर रहा है, तो वह भावविभोर हो गई।

गाय ने बूढ़े से कहा कि तुमने मेरे बच्चे को सम्मान और स्नेह दिया है, इसलिए मैं तुम्हारे साथ रहना चाहूंगी और तुम्हारी मदद करूंगी। और वह बूढ़े के घर चली गई, दूध और गोबर से उसे समृद्ध करती रही। समय के साथ उसके बछड़े बड़े होकर खेत में हल चलाने वाले बैल बन गए, जिनकी मदद से बूढ़े की फसलें लहलहा उठीं।

लेकिन, जब फसल आई तो बूढ़े ने उन पशुओं को एक दाना भी खाने को नहीं दिया। हमेशा की तरह वही रूखी-सूखी घास डाल दी। आहत होकर गाय और उसके बछड़े जो बैल बन चुके थे, जंगल की ओर चल पड़े। बूढ़ा किसान तब बहुत पछताया और उसने उन्हें रोकने की कोशिश की। लेकिन वे नहीं माने। तभी मरांग बुरु (आदिवासियों के प्रमुख देवता) प्रकट हुए और बूढ़े किसान से कहा कि इन पशुओं के बिना तुम्हारा अन्न अधूरा है, इन पशुओं ने ही तुम्हें समृद्ध किया है। यह तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपनी फसल का एक हिस्सा इन्हें अर्पित करो।

कहा जाता है कि तभी से सोहराय पर्व की शुरुआत हुई, जो आज भी प्रकृति, पशु और मानव के सह-अस्तित्व का प्रतीक है।

पांच दिनों का उत्सव

झारखंड के आदिवासी बहुल इलाकों में सोहराय पर्व पांच दिनों तक मनाया जाता है। हर दिन की अपनी विशिष्ट मान्यता, अनुष्ठान और प्रतीकात्मकता होती है। मसलन, पहले दिन उम नड़का कहा जाता है। इस दिन गांव के सभी घरों और गोहालों (पशुओं के रहने का स्थान) की सफाई की जाती है। कृषि उपकरणों जैसे हल, जुआठ आदि को धोकर पवित्र किया जाता है। इसी दिन गाय-बैलों के सींगों पर तेल लगाया जाता है, जिसे तेल मखाई कहा जाता है। कुजरी के तेल से पशुओं के शरीर की मालिश की जाती है, जिससे उनके शरीर के सारे बैक्टीरिया और घाव सब ठीक हो जाते है और शरीर पर चमक आ जाती है।

रात में चौमुखी दीया (चार मुख वाला दीपक) जलाकर गोहाल को आलोकित किया जाता है, जो चारों दिशाओं में समृद्धि और पवित्रता का प्रतीक है। इस दिन जाहेर एरा, गोसाई ऐरा, मरांग बुरु का आह्वान भी किया जाता है।

दूसरे दिन जिसे दाकाय दिन कहा जाता है, महिलाएं सुबह-सुबह चावल के घोल से घर के द्वार से लेकर गोहाल तक अल्पना लगाती हैं। गांव के पाहन (मुख्य पुजारी) द्वारा पशु और गोहाल की विधिवत पूजा की जाती है। इस दौरान मुर्गा या सुअर की बलि दी जाती है और हड़िया (चावल से बनी पारंपरिक मदिरा) को पूर्वजों को अर्पित किया जाता है। बाद में सभी इसे ग्रहण करते हैं। किसी किसी समुदाय में बैलों से

Published by: Amitrakshar Publishers – Amitrakshar International Journal of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
https://www.amitrakshar.co.in/journal/ : editor@amitrakshar.co.in DOI (Crossref) Prefix: 10.63431

Volume – 3 | Issue – III | May-June 2026 | ISSN: 3049-0278 (Online)

Amitrakshar International Journal
of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
(A Social Science, Science and Indian Knowledge Systems Perspective)
Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed, Bi-Monthly, International E-Journal

अंडे फोड़वाने की यह अनोखी परंपरा भी देखने को मिलती है, जिसे सौभाग्य का प्रतीक माना जाता है।
तीसरे दिन को 'खूंटव' कहा जाता है। इस दिन को मवेशियों को धान की बाली एवं मालाओं से सजाकर खूंटे से बांधा जाता है। कहीं कहीं इसे 'सण्टाऊ' भी कहा जाता है। इस दिन एक खेल भी खेला जाता है। इसके लिए गांव के अखरा में एक मजबूत ऊंचा खूंटा गाड़ा जाता है। उसके शीर्ष पर गुड़ और चावल के आटे से बनी गुड़ पीठा (मीठी रोटी) बांधी जाती है, और नीचे एक शक्तिशाली बैल को बांध दिया जाता है। आदिवासी युवक उस रोटी को बिना बैल के वार से घायल हुए निकालने का प्रयास करते हैं। जो इसमें सफल होते हैं, उन्हें वीर कहा जाता है और पाहन उन्हें नए वस्त्र देकर सम्मानित करते हैं। वही कहीं-कहीं प्रत्येक घर के द्वार पर बैलों को बांधकर पीठा पकवान का माला पहनाने का रिवाज है। इसके तहत ढोल और मांदर आदि बजाते हुए बैल से पीठा को छीनने का खेल होता है।
सोहराय पर्व का चौथा दिन 'जाले पूजा' के नाम से जाना जाता है। इस दिन गांव के युवक मांदर और नगाड़े की थाप पर नाच-गान करते हुए घर-घर जाते हैं। हर घर के लोग उन्हें प्रसाद और भोजन देते हैं। अंत में जिस घर में यह सामूहिक नृत्य-गान समाप्त होता है, उसका गृहस्वामी हड़िया (स्थानीय पेय) युवकों को भेंट करता है। दिनभर का यह आयोजन आपसी सौहार्द और भाईचारे की मिसाल होता है, जिसमें हर घर सहभागी बनता है।
पांचवें और अंतिम दिन को 'हाको काटकोम' कहा जाता है। हाको का अर्थ संथाली भाषा में मछली है। इस दिन गांव के पुरुष, बच्चे और बुजुर्ग सभी मिलकर पास के तालाबों की ओर जाते हैं। वे सामूहिक रूप से मछलियों का शिकार करते हैं। दिनभर की इस गतिविधि के बाद गांव में सामूहिक भोज का आयोजन होता है। गांव से एकत्रित चावल, दाल आदि से खिचड़ी भी बनाया जाता है, जिसे गांव के लोग एक साथ कतार में बैठकर खाते हैं। महिलाएं विशेष पकवान बनाती हैं और शाम तक नृत्य और गीतों का दौर चलता है। इस तरह सोहराय पर्व के दौरान मनुष्य, पशु, और प्रकृति सभी मिलकर जीवन के चक्र को पूर्ण करते हैं।

निष्कर्ष

सोहराई चित्रकला भारत की जीवंत कलात्मक परंपराओं का सशक्त प्रमाण है। ये सरल होते हुए भी गहन हैं, गहरी जड़ों से जुड़े हुए हैं फिर भी निरंतर विकसित हो रहे हैं। प्रत्येक आकृति और रंग मौसमी लय, आध्यात्मिक कृतज्ञता और लोगों तथा भूमि के बीच शाश्वत संबंध को दर्शाते हैं।

संदर्भ सूची

1 बीरोतम, बी., (2001), झारखण्ड इतिहास एवं संस्कृति, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना। 2 पागल, अशोक, (2007), पुरातत्व और इतिहास का झारखण्डी धरोहर, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 63।
3 अनुज, भुवनेश्वर, (2001), छोटानागपुर के प्राचीन स्मारक, नागपुरी संस्थान, रांची, पृ० सं० 75।
4 तिवारी, राजकुमार, (2006), झारखण्ड की रूपरेखा, शिवांगन प्रकाशन, रांची।
5 सिंह, सुनील कुमार, (2016), झारखण्ड परिदृश्य, क्रॉउन पब्लिकेशन।
6 सिन्हा, आदित्य प्रसाद, (2014), तुलिका झारखण्ड की जनजातीय चित्रकला, दिल्ली, पृ. सं. – 19।
7. श्री सत्यनारायण लाल 1970, अभिनव शिक्षाशास्त्रः, बुनियादी साहित्य मंदिर, पटना,नवीन संस्करण ।
8. डॉ० जे० डी० जैन, 1977 आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तनः एस चन्द एण्ड कंपनी लिमिटेड, रामनगर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
9. राम नरेश त्रिपाठी, कविता कोमुदी, नवनीत प्रकाशन लि0 बम्बई ।
10. वात्सायन (जयमंगल टीका) ईगल पाकेट बुक्स, कामसुत्रः, गाजियावाद ।
11. देवेन्द्र सत्यार्थी 1948, धरती गाती हैरू, राजकमल प्रकाशन लि0, दिल्ली सं० ।
12. देवेन्द्र सत्यार्थी 1948, धीरे वही गंगाः, राजकमल प्रकाशन लि0, दिल्ली सं० ।
13. देवेन्द्र सत्यार्थी 1948, बेलो फूले आधी रातः, राजकमल प्रकाशन लि0, दिल्ली सं० ।
14. डॉ0 श्याम लाल कौशिक एवं कृष्ण गोपाल, तुलनात्मक शिक्षा ।
15. स्नेहलता कन्हैया लाल कृष्णदास, ब्रज लोक साहित्य का अध्ययनः, लहेरियासराय ।
16. मोहिनी झा 1991, मिथिलाक पावनि – तिहार, पटना ।
17. इन्द्र नारायण झा 1984, मिथिला दिग्दर्शन, हजारीबाग ।
18. उपेन्द्र झा 1983, मिथिला पुरी का अभिज्ञान ।
19. लक्ष्मीनाथ झा 1962, मिथिला की सांस्कृतिक लोक चित्रकला, ईलाहाबाद ।
20. राधाकृष्ण चौधरी, मिथिलाक सांस्कृतिक इतिहास, दरभंगा ।
21. रामचंद्र झा 1958, (सम्पा0) रूद्रधर कृत वर्षकृत्य, वाराणसी ।
22. राजबलि पाण्डेय 1957, हिन्दू संस्कार, वाराणसी ।
23. उपेन्द्र ठाकुर 1956, हिस्ट्री ऑफ मिथिला, दरभंगा ।
24. राधाकृष्ण चौधरी 1958, हिस्ट्री ऑफ बिहार, इलाहाबाद ।
25. आर0 आर0 दिवाकर 1959, (सम्पा०) बिहार थ्रू द एजेज, पटना ।
26. माखन झा 1982, सिविलाईजेशनल रिजन्स ऑफ मिथिला एण्ड महाकौशल, दिल्ली ।
27. डॉ. पी. आर. रूहेला, 1968, सम आस्पेक्ट ऑफ रिसर्च मेथेडोलॉजी, पिंगून ।

Published by: Amitrakshar Publishers – Amitrakshar International Journal of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
https://www.amitrakshar.co.in/journal/ : editor@amitrakshar.co.in DOI (Crossref) Prefix: 10.63431

Volume – 3 | Issue – III | May-June 2026 | ISSN: 3049-0278 (Online)

Amitrakshar International Journal
of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
(A Social Science, Science and Indian Knowledge Systems Perspective)
Open-Access, Peer-Reviewed, Refereed, Bi-Monthly, International E-Journal

28. प्रो. क्यू. माटे, 1970, रिसर्च मेथड इन सोशल साइन्स ।
29. डॉ. पी.आर. रूहेला, 1968, सम आस्पेक्ट ऑफ रिसर्च मेथेडोलॉजी, पिंगून ।
30. प्रो. गुड एण्ड हॉट, 1981, इनफ्लूएन्स ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन रिसर्च, रिसर्चजरनल, न्यूयार्क ।
31. प्रो. श्रीमती यंग, 1985, रिसर्च मेथड एण्ड इटस एप्लीकेशन ।
32. प्रो. गुड एण्ड हॉट, 1981, इनफ्लूएन्स ऑफ स्टेटिसटिक्स ऑन रिसर्च, रिसर्चजरनल, न्यूयार्क ।
33. डॉ. पी.वी. यंग, 1988, एपलीकेशन ऑफ इनभेस्टीगेशन इन प्योर रिसर्च, न्यूर्याकं ।
34. प्रो. सी. एस. मोजर, 1991, अनुसंधान में निरीक्षण का महत्त्व, आगरा ।
35. प्रो. कोनोर, 1990, इम्पारटेन्स ऑफ टेबुलेशन इन रिसर्च, आक्सफोर्ड ।
36. आचार्य, द्विवेदी, रेवाप्रसाद : नाट्शास्त्र खण्ड–2, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला, 2004
37. आचार्य, नंदकेश्वर : अभिनय दर्पण, चौखम्बा पब्लिशिंग, दिल्ली, 1989
38. राथ, रघुनाथ : नाट्यमनोरमा, उड़ीसा संगीत नाटक अकादमी, भुवनेश्वर, 1976
39. सातवेलकर, पं. श्रीपाद दामोदर, ऋग्वेद संहिता (अनुवाद), स्वाध्याय मण्डल पारडी नगरम्, चतुर्थ संस्करणम्, बलसाड प्रदेष, गुजरात प्रान्ते, 1987
40. अग्रवाल, डॉ. आर.ए. – कला विलास भारतीय चित्रकला का विवेचन, नवीनसंस्करण, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ 2000
41.डॉ.विद्यासागर – आभार राजस्थान के वरिष्ठ कलाकारों का प्रलेखन, राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर

Published by: Amitrakshar Publishers – Amitrakshar International Journal of Interdisciplinary and Transdisciplinary Research (AIJITR)
https://www.amitrakshar.co.in/journal/ : editor@amitrakshar.co.in DOI (Crossref) Prefix: 10.63431